हिन्दी–उर्दू का अद्वैत

प्रोफेसर महावीर सरन जैन

रोमानिया की राजधानी 'बुकारेस्त' (रोमानियन भाषा में उच्चारण 'बुकुरेश्ति', भारत में अंग्रेजी के अनुकरण पर 'बुखारेस्ट') में अक्टूबर 1985 ई. में हमने पाकिस्तानी राजदूतावास के प्रभारी राजदूत (शार्ज दै अफ़ेअर्स) मिस्टर एस. वाई. नक्वी को बिदाई दी।वे प्रथम सचिव–स्तर के राजनयिक थे। इसके थोड़े दिनों बाद ही बुकारेस्त में 'इण्डो–रोमानियन ज्वाइंट कमीशन' की बैठक हुई जिसमें भाग लेने के लिए भारत से मंत्री एवं अधिकारीगण आए। इस उपलक्ष्य में भारत के तत्कालीन राजदूत श्री हरदेव भल्ला ने अपने आवास पर स्वागत–समारोह का आयोजन किया तथा इसमें उन्होंने रोमानिया में नवागत पाकिस्तानी राजदूत श्री रब्बानी को भी आमंत्रित किया। भल्ला साहब ने मेरा एवं रब्बानी साहब का परिचय कराया। रब्बानी साहब ने मुझसे कहा, ''प्रोफेसर साहब! आप बुकारेस्त यूनिवर्सिटी में हिन्दी के प्रोफेसर हैं। हम भी पाकिस्तान से उर्दू के प्रोफेसर को यहाँ बुलाना चाहते हैं। इस बारे में हमें तरकीब बताइएगा।''

मैंने उत्तर दिया, ''आप उर्दू के किसी प्रोफेसर को बुलाना चाहते हैं–यह मेरे लिए खुशी की बात है, मगर जब तक वे नहीं आते तब तक आप मुझे ही उर्दू का भी प्रोफेसर मान सकते हैं क्योंकि मैं हिन्दी एवं उर्दू को एक ही ज़बान मानता हूँ।''

मेरी इस बात को सुनकर वे चौंक पड़े और उन्होंने प्रतिवाद किया, ''ये आप क्या कह रहे हैं? दोनों ज़बानें तो जुदा–जुदा हैं।''

मैंने कहा, ''ज़बानें जुदा–जुदा नहीं हैं, हिन्दी–उर्दू एक ही ज़बान की दो स्टाइलें हैं।''

उन्होंने कहा, ''हरगिज़ नहीं, हम यह नहीं मानते।''

मेरे मन में यह भाव आया कि मेरे द्वारा राजनयिक वातावरण की औपचारिकताओं में विघ्न नहीं पड़ना चाहिए। मैंने अत्यंत विनम्र स्वरों में उनसे निवेदन किया, ''बेहतर हो, हम लोग अलग बैठकर आराम से इस मुद्दे पर बातचीत करें।''

मेरा यह प्रस्ताव उन्हें पसंद आया। हम दोनों एक सोफे पर बैठ गए। मैंने वार्ता आरंभ की, ''हिन्दी मुसलमानों का दिया हुआ लफ्ज़ है।''

इसको सुनकर उन्होंने कुछ ऐसा भाव प्रकट किया, जैसे मैं उनको बनाने का प्रयास कर रहा हूँ। इसके पहले कि वे कुछ कह पाते, मैंने गंभीर होकर कहा, ''देखिए आप एक देश के एम्बेसेडर साहब हैं, हमारे मेहमान हैं। मगर ज़रा आप यह भी सोचिए कि मैं भी एक प्रोफेसर हूँ। मैं एकेडेमिक बात कह रहा हूँ। किसी जज़बात में बहकर कोई बात नहीं कह रहा हूँ। मेरा इस मुद्दे पर जो नज़रिया है, मैंने जो पढ़ा–लिखा है, सोचा है, उसे आपके सामने रखने की कोशिश कर रहा हूँ।''

मेरी बात सुनने के बाद वे आराम से बैठ गए। मैंने उन्हें विस्तारपूर्वक बतलाया कि ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में 'स्' ध्वनि नहीं बोली जाती थी। 'स्' को 'ह्' रूप में बोला जाता था। जैसे संस्कृत के 'असुर' शब्द को वहाँ 'अहुर' कहा जाता था। अफ़गानिस्तान के बाद सिन्धु नदी के इस पार हिन्दुस्तान के पूरे इलाके को प्राचीन फ़ारसी साहित्य में भी 'हिन्द', 'हिन्दुश' के नामों से पुकारा गया है तथा यहाँ की किसी भी वस्तु, भाषा, विचार को 'एडजेक्टिव' के रूप में 'हिन्दीक' कहा गया है जिसका मतलब है 'हिन्द का'। यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता हुआ ग्रीक में 'इंदिके', 'इंदिका', लैटिन में 'इंदिया' तथा अंग्रेजी में 'इंडिया' बन गया। अरबी एवं फारसी साहित्य में हिन्दी में बोली जाने वाली ज़बानों के लिए 'ज़बान–ए–हिन्दी', लफ्ज़ का प्रयोग हुआ है। भारत आने के बाद मुसलमानों ने 'ज़बान–ए–हिन्दी', 'हिन्दी जुबान' अथवा 'हिन्दी' का प्रयोग दिल्ली–आगरा के चारों ओर बोली जाने वाली भाषा के अर्थ में किया। भारत के गैर–मुस्लिम लोग तो इस क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषा–रूप को 'भाखा' नाम से पुकराते थे, 'हिन्दी' नाम से नहीं। इसी कारण मैंने यह कहा था कि 'हिन्दी' मुसलमानों का दिया हुआ लफ्ज़ है।

जिस समय मुसलमानों का यहाँ आना षुरु हुआ उस समय भारत के इस हिस्से में साहित्य–रचना शौरसेनी अपभ्रंश में होती थी। बाद में डिंगल

साहित्य रचा गया। मुग़लों के काल में अवधी तथा ब्रज में साहित्य लिखा गया। आधुनिक हिन्दी साहित्य की जो जुबान है, उस जुबान 'हिन्दवी' को आधार बनाकर रचना करने वालों में सबसे पहले रचनाकार का नाम अमीर खुसरो है जिनका समय 1253 ई0 से 1325 ई0 के बीच माना जाता है। ये फ़ारसी के भी विद्वान थे तथा इन्होंने फ़ारसी में भी रचनाएँ लिखीं मगर 'हिन्दवी' में रचना करने वाले ये प्रथम रचनाकार थे। यदि आपको यकीन न हो तो मैं इनकी अनेक पहेलियाँ सुना सकता हूँ।

रब्बानी साहब कुछ नहीं बोले। मैंने खुसरो की दो रचनाएँ सुनाईं–

(1) क्या जानूँ वह कैसा है। जैसा देखा वैसा है।

(2) एक नार ने अचरज किया। साँप मारि पिंजड़े में दिया।

रब्बानी साहब ने कहा कि इन्हें तो उर्दू कहा जा सकता है। मैंने कहा कि नाम में क्या रखा है, आप चाहे हिन्दी कहें, हिन्दवी कहें, उर्दू कहें–एक ही तो बात है। मगर अमीर खुसरो ने इसे 'हिन्दवी' कहा है। एक जगह उन्होने लिखा है जिसका भाव है कि मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ, हिन्दवी में जवाब देता हूँ। (उनकी मूल पंक्ति इस प्रकार है : 'तुर्क हिन्तुस्तानियम हिन्दवी गोयम जवाब')

उर्दू

इसके बाद हमारी बातचीत उर्दू के मतलब तथा उसके जन्म की तरफ मुड़ी। 'उर्दू' मूलतः तुर्की लफ्ज़ है जिसके मायने होते हैं : छावनी, लश्कर। 'मुअल्ला' अरबी लफ्ज़ है जिसके मायने हाते हैं : सबसे बढ़िया। शाही पड़ाव, शाही छावनी, शाही लश्कर के लिए पहले 'उर्दू–ए–मुअल्ला' शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ। बाद में बादशाही सेना के पड़ावों, छावनियों तथा बाज़ारों (लश्कर बाज़ारों) में हिन्दवी अथवा देहलवी का जो भाषा रूप बोला जाता था उसे 'ज़बाने–उर्दू–ए–मुअल्ला' कहा जाने लगा। बाद को जब यह जुबान फैली तो 'मुअल्ला' शब्द हट गया तथा 'ज़बाने उर्दू' रह गया। 'ज़बाने उर्दू' के मतलब 'उर्दू की जुबान' या अंग्रेजी में 'लैंग्वेज ऑफ उर्दू'। बाद को इसी का संक्षेप में 'उर्दू' कहा जाने लगा।

उर्दू में साहित्य–रचना बाद में आरम्भ हुई। उर्दू–साहित्य के इतिहासकार वली औरंगाबादी (रचनाकाल 1700 ई. के बाद) को उर्दू का प्रथम शायर

मानते हैं। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी का इतिहास लिखने वाले इनको खड़ी बोली की 'दक्खिनी हिन्दी' का एक कवि मानते हैं। शाहजहाँ ने अपनी राजधानी, आगरा के स्थान पर, दिल्ली बनाई और अपने नाम पर सन् 1648 ई. में 'शाहजहाँनाबाद' आबाद किया, लालकिला बनाया। ऐसा मालूम होता है कि इसके बाद से राजदरबारों में फ़ारसी के साथ–साथ 'जबाने–उर्दू–ए–मुअल्ला' में भी रचनाएँ होने लगीं। यह प्रमाण मिलता है कि शाहजहॉ के समय में पंडित चन्द्रभान बिरहमन ने बाज़ारों में बोली जाने वाली जनभाषा को आधार बनाकर फ़ारसी शैली में रचनाएँ कीं। ये फ़ारसी लिपि जानते थे। अपनी रचनाओं को इन्होंने फ़ारसी लिपि में लिखा। धीरे–धीरे दिल्ली के शाहजहाँनाबाद की उर्दू–ए–मुअल्ला का महत्व बढ़ने लगा।

उर्दू के शायर मीर साहब (1712–1810 ई.) ने एक जगह लिखा है–

''दर फ़ने रेख़ता कि शेरस्त बतौर शेर फ़ारसी ब ज़बाने

उर्दू–ए–मोअल्ला शाहजहाँनाबाद देहली।''

ज़बान तथा स्क्रिप्ट

रब्बानी साहब ने कहा कि कम से कम ''स्क्रिप्ट'' का अन्तर तो आप भी मानते हैं। मैंने कहा कि स्क्रिप्ट (लिपि) का भेद रहा है क्योंकि बादशाही दरबारों की भाषा फ़ारसी थी तथा लिपि भी फ़ारसी थी। उन्होंने अपनी रचनाओं को जनता तक पहुँचाने के लिए भाषा तो जनता की अपना ली, मगर उन्हें फ़ारसी लिपि में लिखते रहे।

मगर ज़बान (भाषा) अलग चीज़ है, स्क्रिप्ट (लिपि) अलग चीज। ज़बान है जो बोली जाती है, लिपि है जिसमें उसे लिखा जाता है। एक ज़बान को एक से अधिक लिपियों में लिखा जा सकता है तथा एक ही स्क्रिप्ट (लिपि) में एक से अधिक ज़बानें लिखी जा सकती हैं। रोमन लिपि में यूरोप की कितनी भाषाएँ लिखी जाती हैं। रोमन स्क्रिप्ट तो एक ही है उसी एक स्क्रिप्ट में कितनी भाषाएँ लिखी जाती हैं। हिन्दी के बहुत से कवियों ने अपनी रचनाएँ फ़ारसी लिपि में लिखीं मगर उनकी रचनाएँ फ़ारसी भाषा की नहीं, हिन्दी की हैं। सन् 1928 ई. में जब तुर्कों ने अरबी के स्थान पर रोमन स्क्रिप्ट में लिखना स्वीकार किया, तो उनकी ज़बान नहीं बदल गयी, तब भी वे उसी प्रकार बोलते रहे जैसे पहले बोला करते थे।

इसके बाद मैंने यह स्पष्ट किया कि 18वीं सदी के अन्त तक हिन्दी, हिन्दवी, उर्दू, रेखता, देहलवी, हिन्दुस्तानी, आदि शब्दों का ''सिनानिम'' (समानार्थी) रूप में प्रयोग होता रहा। मैं आपको उदाहरण दे सकता हूँ जिससे यह बात साफ़ हो जाएगी। नासिख, सौदा, मीर तथा आतिश ने अपने शेरों को एकाधिक बार हिन्दी शेर कहा है तथा ग़ालिब ने अपने ख़तों में हिन्दी, उर्दू, तथा रेखता का कई जगहों पर सिनानिम (समानार्थी) रूप में प्रयोग किया है।

अंग्रेज़ तथा हिन्दी और उर्दू का अलगाव

रब्बानी साहब ने जानना चाहा कि जो कुछ मैंने कहा है वह यदि सही है तो फिर हिन्दी एवं उर्दू को अलग–अलग जुबान क्यों माना जाने लगा।

इसके लिए मैंने अंग्रेजों की हिन्दुओं एवं मुसलमानों में 'फूट डालो और राज्य करो' वाली नीति का ब्यौरा दिया । इस बारे में उन्होंने अपनी रज़ामंदी प्रकट की। इसके बाद काम आसान हो गया। मैंने कहा जैसे पालिटिक्स की अलग तरह की ज़बान होती है उसी प्रकार ज़बान की पालिटिक्स भी होती है जिसे अंग्रेजी में Glottopolitics कहते हैं। अंग्रेजों ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। इसका उद्देश्य भारत में आने वाले अंग्रेज कर्मचारियों को देशी भाषाओं का ज्ञान कराना प्रतिपादित किया गया। उद्देश्य तो बहुत अच्छा था। मेरा सवाल है कि 19वीं सदी में ईसाई मिशनरियों ने उत्तर भारत में ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए बाइबिल के अनुवादों में जिस सरल एवं जनसुलभ भाषा–रूप को अपनाया, फोर्ट विलियम कॉलेज में अंग्रेज कर्मचारियों को सिखाने के लिए उस भाषा–रूप में भाषा–पाठ्य सामग्री का निर्माण क्यों नहीं किया गया। फोर्ट विलियम के डाइरेक्टर गिलक्राइस्ट ने लल्लूलाल को 'प्रेमसागर' के लिखते समय 'यामनी (मुसलमानी) भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह' की हिदायत क्यों दी। उन्होंने सदल मिश्र से यह क्यों ठहराया और उन्हें यह आज्ञा क्यों दी कि वे अध्यात्म–रामायण की रचना ऐसी बोली में करें जिसमें अरबी–फारसी के शब्द न आने पावें। सबसे पहले गिलक्राइस्ट ने 'हिन्दी' तथा 'उर्दू' का भेद नहीं किया। सन् 1804 ई. में उन्होने 'हिन्दुस्तानी' एवं 'खरी बोली' का अंतर बतलाते हुए कहा कि खरी बोली में किसी भी अरबी एवं फारसी शब्द का प्रयोग नहीं होता। जनता तो अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग अंग्रेजों के आने के पहले भी करती थी उनके ज़माने में भी करती थी और

आज भी करती है। मगर गिलग्राइस्ट के सिर पर तो भाषा के शुद्धीकरण की चिन्ता सवार थी। वे खरी, शुद्ध, बिना मिलावट की, खालिस तथा विशुद्ध भाषा का निर्माण कराने में लग गये। 1804 ई. में जो अंतर 'हिंदुस्तानी' एवं 'खरी बोली' में प्रतिपादित किया गया था उसे सन् 1812 ई. में 'हिन्दुस्तानी – रेख़्ता' एव 'हिन्दी' का भेद बतलाया गया। सन् 1812 ई. मे फोर्ट विलियम कॉलेज के वार्षिक विवरण में कैप्टन टेलर ने यह भेद बतलाते हुए कहा,

''मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिक्र कर रहा हूँ जो फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा हूँ जिसकी अपनी लिपि है तथा जिसमें अरबी–फ़ारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता।''

मैंने केवल इशारा किया है कि जनता के द्वारा जो भाषा बोली जाती थी, उसको किस प्रकार दो भिन्न भाषाओं के रूप में प्रदर्शित करने के लिए षड़्यंत्र रचा गया तथा एक को मुसलमानों की भाषा तथा दूसरी को हिन्दुओं की भाषा कहा गया। एक ही भाषा की दो स्टाइलें विकसित कराकर उनको भिन्न भाषाओं के रूप में प्रचारित प्रसारित करने तथा तदनन्तर उन्हें भिन्न धर्मों के साथ जोड़ देने की गहरी साजिश रची गई। उर्दू को इस्लाम धर्म या मुसलमानों के साथ जोड़ दिया गया। ग्रियर्सन तक ने कहा कि 'उर्दू' इस्लाम के साथ दूर–दूर तक फैली।

रब्बानी साहब ने बतलाया कि हम भी उर्दू को मुसलमानों की ज़बान मानते हैं तथा पाकिस्तान में उर्दू को अपने वतन की तहज़ीब एवं पहचान की ज़बान माना जाता है।

भाषा एवं धर्म

मैंने सवाल उठाया कि क्या धर्म की कोई भाषा होती है। मैंने यह स्थापना की कि धर्म की भाषा नहीं होती, किसी धर्म के ग्रंथों की भाषा अवश्य होती है। इस दृष्टि से इस्लाम के धर्मग्रंथ 'कुरान' की ज़बान अरबी है। मुसलमानों की कोई भाषा नहीं है, मुसलमानों के इस्लाम धर्म की 'कुरान' की भाषा अरबी है ।इसी प्रकार ईसाइयों की कोई भाषा नहीं है, ईसाइयों के धर्म–ग्रंथ 'बाइबिल' (ओल्डटेस्टामेण्ट) की भाषा हिब्रू है। अरबी एवं हिब्रू दोनों ही 'सामी' या सेमेटिक परिवार की भाषाएँ हैं। इस्लाम धर्म एवं ईसाई धर्म के अनुयायी संसार के अलग–अलग मुल्कों में रहते हैं तथा जहाँ रहते हैं वहाँ की भाषा बोलते हैं। भारत में केरल के मुसलमान मलयालम बोलते हैं, तमिलनाडु के

मुसलमान तमिल तथा पश्चिम बंगाल के मुसलमान बंगला। मैंने चुटकी ली और कहा कि बंगलादेश में भी जो मुसलमान रहते हैं वे उर्दू का नहीं, अपितु बंगला भाषा का प्रयोग करते हैं।

हिन्दी एवं उर्दू की भाषिक एकता के सम्बन्ध में मैंने रब्बानी साहब से यह प्रश्न किया कि क्या आप इस बात से सहमत हैं कि यदि दो लैंग्वेज भिन्न होती हैं, तो एक भाषा के वाक्य का हम दूसरी भाषा में अनुवाद या तर्जुमा कर सकते हैं । उन्होंने सहमति व्यक्त की। मैंने कहा कि मैं हिन्दी के कुछ जुमले बोल रहा हूँ, आप मुझे यह बतलाने की कृपा करें कि उर्दू में इनका अनुवाद किस प्रकार होगा।

1. मैं रोजाना जाता हूँ।

2. मुझे चार रोटियॉ खानी हैं।

3. हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की धरती के पानी तथा आकाश की हवा में क्या फरक है ?

उन्होंने ठहाका लगाया और कहा कि प्रोफेसर साहब आप तो उर्दू बोल रहे हैं और मुझसे कह रहे हैं कि मैं इनका उर्दू में ट्रान्सलेशन कर दूँ। आप हिन्दी में बोलिए तो मैं ट्रान्सलेशन करने की कोशिश करूँ।

अन्त मैं, मैंने रब्बानी साहब से कहा कि मैं भाषा विज्ञान का भी विद्यार्थी हूँ तथा मैंने भाषाविज्ञान में पढ़ा है कि भिन्न भाषा–भाषी व्यक्ति परस्पर बातचीत नहीं कर सकते, विचारों का आदान–प्रदान नहीं कर सकते। जैसे यदि मुझे फ्रेंच भाषा नहीं आती तथा फ्रेंच भाषी व्यक्ति को मेरी भाषा नहीं आती, तो यदि वह फ्रेंच बोलेगा तो मैं उसकी बात नहीं समझ पाऊँगा तथा मैं हिन्दी में बोलूँगा तो वह मेरी बात नहीं समझ पाएगा। दोनों के बीच संकेतों, मुख–मुद्राओं, भावभंगिमाओं के माध्यम से भले ही भावों का आदान–प्रदान हो जाए मगर भाषा के द्वारा विचारों का आदान–प्रदान नहीं हो पाएगा। मैंने प्रश्न किया कि हम लोग इतनी देर से बातचीत कर रहे हैं, मैं तो आपकी बातें पूरी तरह से समझ सका हूँ, आप मेरी बात समझ सके हैं या नहीं ? रब्बानी साहब ने कहा, ''बात समझने में तो मुझे भी दिक्कत नहीं हुई। अलबत्ता कुछ अल्फाज़ मेरी समझ में नहीं आए थे जिन्हें आपने अंग्रेजी में ट्रान्सलेट कर दिया।'' मैंने कहा, ''रब्बानी साहब, आप कहते हैं कि आपको हिन्दी नहीं

आती, आप कह रहे हैं कि इतनी देर तक आप उर्दू में बोले। मैं कह सकता हूँ कि मुझे उर्दू नहीं आती, मैं कहता हूँ कि इतनी देर तक मैं हिन्दी में बोला। मगर हम दोनों इतनी देर तक बातचीत करते रहे और एक–दूसरे की बात को समझते भी रहे । इसलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दी तथा उर्दू अलग–अलग जुबान नहीं हैं।''

इस के बाद मेरी रब्बानी साहब से अनेक बार मुलाकातें हुईं। भाषा एवं जाति, भाषा एवं धर्म तथा भाषा एवं संस्कृति – जैसे विषयों पर उनके साथ विचार–विमर्श हुआ। रब्बानी साहब ने बतलाया कि इस्लाम की पैदाइश तो अरब में ही हुई। बाद को जब यह ईरान में फैला तो पर्शियन कल्चर का इस पर प्रभाव पड़ा। जब इस्लाम मज़हब हिन्दुस्तान आया तो इसका प्रभाव हिन्दुस्तान पर पड़ा।

मैंने कहा, ''रब्बानी साहब जैसे मैं मज़हब तथा भाषा (ज़बान) का संबंध नहीं मानता, वैसे ही जाति तथा भाषा, मज़हब तथा जाति, तथा मज़हब एवं कल्चर का भी अटूट संबंध नहीं मानता। हमें इनका फ़र्क पहचानना चाहिए।''

जाति तथा भाषा

एक जाति के लोग प्रायः एक भाषा बोलते हैं, इस कारण जाति और भाषा का संबंध मान लिया जाता है। अमेरिका में 'श्वेत' जाति अलग है, 'नीग्रो' अलग है। वहाँ लाखों नीग्रो अंग्रेजी भाषा बोलते हैं। अंग्रेजी बोलने के कारण इन नीग्रो लोगों को श्वेत जाति का नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार जर्मनी में दो जातियाँ रहती हैं (1) नार्डिक (2) आल्पाइन। मगर दोनों जातियाँ जर्मन भाषा बोलती हैं। आप रोमानिया को ही देख लीजिए। यहाँ रोमानियन, माग्यार (हंगेरियन), जर्मन, जिप्सी, उक्रेनियन, सेब्रेनियन, यहूदी, तुर्क अनेक जातियों के लोग रहते हैं मगर सब रोमानियन भाषा बोलते हैं।

जाति तथा धर्म

सामान्य व्यवहार में हम धर्म को जाति से जोड़ने की भूल करते आए हैं : हिन्दू जाति, मुस्लिम जाति, ईसाई जाति। वैज्ञानिक दृष्टि से इस तरह की बातें भ्रामक हैं। अंग्रेज जाति, रूसी जाति, मग्यार जाति, चैक जाति – ये अलग–अलग जातियाँ हैं। ये सभी ईसाई धर्म को मानती हैं। भारत एवं

पाकिस्तान में भी 'ईसाई' रहते हैं। क्या इन्हें इंग्लैंड के ईसाइयों की अंग्रेज़ जाति का माना जा सकता है ?

धर्म एवं संस्कृति

धर्म को संस्कृति के साथ जोड़ना भी ठीक नहीं है। हिन्दू संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, ईसाई संस्कृति, बौद्ध संस्कृति – जैसे शब्दों का प्रयोग होता है मगर ये प्रयोग अवैज्ञानिक हैं। बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार तिब्बत, लंका, जापान तीनों देशों में है। धर्म की दृष्टि से तीनों देश बौद्ध धर्म को मानते हैं। मगर तीनों देशों की भाषाएँ अलग हैं, संस्कृतियाँ अलग हैं।

अंग्रेज लोगों ने हिन्दुस्तान पर शासन किया। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव हिन्दुस्तान की भाषाओं पर पड़ा। यूरोपीय कल्चर ने हिन्दुस्तान की संस्कृति को प्रभावित किया। यह कहना अवैज्ञानिक है कि ईसाई भाषा ने हमारी भाषाओं को प्रभावित किया या ईसाई कल्चर से हमारी कल्चर प्रभावित हुई।

इण्डोनेशिया, इराक, ईरान तथा सूडान ये चारों देश इस्लाम धर्म को मानते हैं। धर्म की दृष्टि से ये चारों मुस्लिम देश हैं। मगर इनकी भाषाएँ अलग हैं। इनकी कल्चर अलग हैं।

इण्डोनेशिया में आस्ट्रि ोनेषियन परिवार की इण्डोनेशियिन–बहासा तथा जावी आदि भाषाएँ बोली जाती हैं तथा यहॉ जावा–सुमात्रा–बोर्नियो आदि द्वीपों की कल्चर है।

इराक में सामी या सेमेटिक परिवार की अरबी तथा कुर्दिश भाषाएँ बोली जाती हैं। इराक मासोपोटामिया कल्चर का वंशधर है।

ईरान में इण्डो–यूरोपियन परिवार की 'इण्डो–ईरानियन' शाखा की फ़ारसी (पर्शियन) भाषा बोली जाती है तथा इसकी ईरानी या पर्शियन कल्चर है।

मैंने संदर्भ से यह भी बतलाना उचित समझा कि फ़ारसी की प्राचीन भाषा का नाम 'अवेस्ता' था जिसमें जोरोस्ट्रियन (अवेस्ता में 'ज़रथुस्त्र') धर्म ग्रंथ की रचना हुई थी।

सूडान में अफ्रीका महाद्वीप की संस्कृति है तथा वहॉ अफ्रीकन परिवार की डिन्का, नूबा आदि भाषाएँ बोली जाती हैं।

हिन्दुस्तान एवं इस्लामी संस्कृति

रब्बानी साहब ने कहा कि उन्होंने अनेक किताबें पढ़ी हैं जिनमें हिन्दुस्तान की कल्चर पर इस्लामी कल्चर का असर साफ–साफ दिखलाया गया है। उन्होंने डॉक्टर ताराचंद की किताब ''इन्फ्लुयेन्सिस ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर'' का नाम लिया। उन्होंने बतलाया कि प्रोफ़ेसर हुमायूँ कबीर ने भी 'अवर हेरिटेज़' नामक किताब में यही बात कही है। उन्होंने अन्य बहुत से विद्वानों के नाम तथा उनकी किताबों के नाम लिए जो मुझे इस समय याद नहीं हैं। मैंने कहा कि आपकी बात सही है। अंग्रेजों ने हमारे पूरे समाज को हिन्दू एवं मुसलमान – इन दो भागों में बाँटकर देखा तथा दिखाया। मैंने कहा कि इस बारे में दो बातें हैं–

1/– किसी मज़हब के असूलों का प्रभाव दूसरे मज़हबों पर पड़ता है या पड़ सकता है या किसी देश या जाति के लोगों के सोचने के ढ़ंग को भी प्रभावित कर सकता है मगर भाषाएँ तो भाषाओं से प्रभावित होती हैं तथा संस्कृतियाँ संस्कृतियों से प्रभावित होती हैं। हमारी भाषाओं पर अंग्रेजी भाषा का प्रभाव पड़ा, हमारी कल्चर यूरोपीय कल्चर से प्रभावित हुई, न कि हमारी भाषाएँ एवं हमारी कल्चर 'ईसाई मज़हब' से प्रभावित हुईं।

2/– हिन्दुस्तान में एक ही देश, एक ही जुबान तथा एक ही जाति के मुसलमान नहीं आए। सबसे पहले यहाँ अरब लोग आए। अरब सौदागर, फ़कीर, दरवेश सातवीं शताब्दी से आने आरंभ हो गए थे तथा आठवीं शताब्दी (711–713 ई.) में अरब लोगों ने सिन्ध एवं मुलतान पर कब्जा कर लिया। इसके बाद तुर्की के तुर्क तथा अफ़गानिस्तान के पठान लोगों ने आक्रमण किया तथा यहाँ शासन किया। षहाबुद्दीन गौरी (1175–1206) के आक्रमण से लेकर गुलामवंश (1206–1290), खिलजीवंश (1290–1320), तुगलक वंश (1320–1412), सैयद वंश (1414–1451) तथा लोदीवंश (1451–1526) के शासनकाल तक हिन्दुस्तान में तुर्क एवं पठान जाति के लोग आए तथा तुर्की एवं पश्तो भाषाओं तथा तुर्क–कल्चर तथा पश्तो–कल्चर का प्रभाव पड़ा।

मुगल वंश की नींव डालने वाले बाबर का संबंध यद्यपि मंगोल जाति से कहा जाता है और बाबर ने अपने को मंगोल बादशाह 'चंगेज़ खॉ' का वंशज कहा है और मंगोल का ही रूप 'मुगल' हो गया मगर बाबर का जन्म मध्य एशिया क्षेत्र के अंतर्गत फरगाना में हुआ था। मंगोल एवं तुर्की दोनों जातियों का वंशज बाबर वहीं की एक छोटी सी रियासत का मालिक था।

उज़्बेक लोगों के द्वारा खदेड़े जाने के बाद बाबर ने अफ़गानिस्तान पर कब्जा किया तथा बाद में 1526 ई. में भारत पर आक्रमण किया। बाबर की सेना में मध्य एशिया के उज़्बेक एवं ताज़िक जातियों के लोग थे तथा अफ़गानिस्तान के पठान लोग थे।

बाबर का उत्तराधिकारी हुमायूँ जब अफ़गान नेता शेरखॉ (बादशाह शेरशाह) से युद्ध में पराजित हो गया तो उसने 1540 ई. में 'ईरान' में जाकर शरण ली। 15 वर्षों के बाद 1555 ई. में हुमायूँ ने भारत पर पुनः आक्रमण कर अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया। 15 वर्षों तक ईरान में रहने के कारण उसके साथ ईरानी दरबारी सामन्त एवं सिपहसालार आए। हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब आदि मुगल बादशाह यद्यपि ईरानी जाति के नहीं थे, 'मुगल' थे (तत्वतः मंगोल एवं तुर्की जातियों के रक्त मिश्रण के वंषधर) फिर भी इन सबके दरबार की भाषा फारसी थी तथा इनके शासनकाल में पर्शियन कल्चर का हिन्दुस्तान की कल्चर पर अधिक प्रभाव पड़ा।

<u>इस्लाम धर्मावलंबी अनेक जातियों की भाषाओं–संस्कृतियों का प्रभाव</u>

इस प्रकार जिसको आप इस्लाम संस्कृति का प्रभाव कहते हैं या समझते हैं वह इस्लाम धर्म को मानने वाली विभिन्न जातियों की संस्कृतियों के प्रभाव के लिए अंग्रेजों द्वारा दिया हुए एक नाम है, लफ़्ज़ है। अरबी, तुर्की, उज़्बेकी, ताज़िकी, अफगानी या पठानी, पर्शियन या ईरानी अनेक जातियों की भाषाओं एवं संस्कृतियों का हमारी भाषाओं पर तथा हिन्दुस्तान की कल्चर पर प्रभाव पड़ा है।

जीवन के जिस क्षेत्र में हमने संस्कृति के जिस तत्व को ग्रहण किया तो उसके वाचक शब्द को भी अपना लिया। तुर्की से कालीन (क़ालीन) और गलीचा (ग़ालीचः), अरबी से कुर्सी तथा फ़ारसी से मेज़, तख्त (तख़्त) तथा तख़्ता शब्द आए। फ़ारसी से जाम तथा अरबी से सुराही तथा साकी (साक़ी) शब्दों का आदान हुआ। कंगूरा (फ़ारसी–कंगूरः), गुंबद, बुर्जी (अरबी–बुर्ज) तथा मीनार आदि शब्दों का चलन हमारी स्थापत्यकला पर अरबी–फारसी कल्चर के प्रभाव को बताता है। कव्वाली (फ़ारसी–क़व्वाली), गजल (अरबी –ग़ज़ल) तथा रुबाई शब्दों से हम सब परिचित हैं क्योंकि उत्तर भारत में कव्वाल लोग कव्वाली गाते हैं तथा अन्य संगीतज्ञ गजल एवं रुबाई पढ़ते हैं। जब भारत के वातावरण में शहनाई गूँजने लगी ते अरबी

शब्द 'शहनाई' भी बोला जाने लगा। मृदंग और पखावज के स्थान पर जब संगत करने के लिए तबले का प्रयोग बढ़ा तो तबला (अरबी–तब्लः) शब्द हमारी भाषाओं का अंग बन गया। धोती एवं उत्तरीय के स्थान पर जब पहनावा बदला तो कमीज (अरबी–क़मीस, तुर्की–कमाश), पाजामा (फ़ारसी–पाजामः), चादर, दस्ताना (फ़ारसी–दस्तानः), मोजा (फ़ारसी – मोजः) शब्द प्रचलित हो गए।

जब क़ाबुल और कंधार (अफ़गानिस्तान) तथा बुख़ारा एवं समरकंद प्रदेश (उज़्बेकिस्तान) से भारत में मेवों तथा फलों का आयात बढ़ा तो भारत की भाषाओं में अंजीर, किशमिश, पिस्ता, बादाम, मुनक्का आदि मेवों तथा आलू बुखारा, खरबूजा, खुबानी (फ़ारसी–ख़ूबानी), तरबूज, नाशपाती, सेब आदि फलों के नाम– शब्द भी आ गए। मुस्लिम–शासन के दौरान मध्य एशिया और ईरानी अमीरों के रीतिरिवाजों के अनुकरण पर भारत के सामन्त भी बड़ी–बड़ी दावतें देने लगे थे। यहाँ की दावतों में गुलाबजामुन, गज्जक, बर्फी, बालूशाही, हलवा–जैसी मिठाइयाँ परोसी जाने लगीं। खाने के साथ अचार का तथा पान के साथ गुलकंद का प्रयोग होने लगा। गर्मियों में शरबत, मुरब्बा, कुल्फी का प्रचलन हो गया। निरामिष में पुलाव तथा सामिष में कबाब एवं कीमा दावत के अभिन्न अंग बन गए । श्रृंगार–प्रसाधन तथा मनोरंजन के नए उपादान आए तो उनके साथ उनके शब्द भी आए । खस का इत्र, साबुन, खिजाब, सुर्मा, ताश आदि शब्दों का प्रयोग इसका प्रमाण है। कागज़, कागज़ात, कागज़ी – जैसे अरबी शब्दों से यह संकेत मिलता है कि संभवतः अरब के लोगों ने भारत में कागज बनाने का प्रचार किया। मीनाकारी, नक्काशी, रसीदाकारी, रफूगीरी – जैसे शब्दों से कला–कौशल के क्षेत्र में शब्दों से जुड़ी जुबानों के क्षेत्रों की कल्चर के प्रभाव की जानकारी मिलती है।

उर्दू एवं पाकिस्तान

रब्बानी साहब के दूसरे प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा कि उर्दू भले ही पाकिस्तान की राज्यभाषा (स्टेट लैंग्वेज) हो, मगर उर्दू का पाकिस्तान में कोई 'भाषा–क्षेत्र' (लैंग्वेज एरिया) नहीं है। पाकिस्तान में पंजाबी, सिन्धी, पश्तो, ब्लूची के भाषा–क्षेत्र हैं मगर उर्दू का कोई भाषा–क्षेत्र नहीं है। रब्बानी साहब ने मुझे बीच में ही टोककर कहा कि आपके यहाँ भी तो अंग्रेजी का कोई लैंग्वेज एरिया नहीं है। मैंने कहा कि हमारे यहाँ अंग्रेजी का प्रयोग केन्द्र–शासन द्वारा राजकाज चलाने के लिए ''राजभाषा'' (ऑफिशियल लैंग्वेज) के रूप में होता है। हमारे यहाँ अंग्रेजी उस अर्थ में राज्यभाषा (स्टेट

लैंग्वेज) नहीं है जिस अर्थ में आप उर्दू को पाकिस्तान की भाषा बता रहे हैं, जिसको पाकिस्तान के प्रत्येक 'प्रोविन्स' में ग्रेजुएट होने होने तक पढ़ना अनिवार्य है। ऐसे देशों के उदाहरण तो मिलते हैं जिन्होंने उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद भी अपने पूर्व–विजेता शासक की भाषा को अपने यहाँ बनाए रखा मगर पाकिस्तान ने देश के निर्माण के बाद हिन्दुस्तान की भाषा 'उर्दू' को स्टेट लैंग्वेज बनाया।

मैंने रब्बानी साहब से प्रश्न किया कि आपके यहाँ सेन्सस की रिपोर्ट के अनुसार कितने फीसदी लोगों की मादरी जबान उर्दू है। उन्होंने रिपोर्ट देखने के बाद मुझे सूचना देने का वायदा किया। बाद में उन्होंने मुझे सूचित किया कि 1981 की सेन्सस रिपोर्ट के अनुसार पाकिस्तान में पंजाबी 48.97 प्रतिशत, पश्तो 13.15 प्रतिशत, सिन्धी 11.77 प्रतिशत तथा उर्दू 7.6 फीसदी लोगों की मादरी जबान है। जंगलों में रहने वाले लोगों तथा ब्लूची आदि बाकी सभी जबानों को बोलने वाले 16.31 प्रतिशत है। इनके बोलने वालों की संख्या रब्बानी साहब ने 1981 की सेन्सस रिपोर्ट के आधार पर बतलाई :

पाकिस्तान की कुल जनसंख्या — 8,42,53,000

1. पंजाबी–भाषियों की जनसंख्या — 4,05,84,670

2. पश्तो–भाषियों की जनसंख्या — 1,10,79,269

3. सिन्धी–भाषियों की जनसंख्या — 0,99,16,578

4. उर्दू–भाषियों की जनसंख्या — 0,64,03,228

5. ब्लूची एवं अन्य बोलियों के

   भाषियों की जनसख्या — 1,62,69,254

रब्बानी साहब ने ये आँकड़े अंग्रेजी में दिए थे। आठ–नौ करोड़ की आबादी वाले मुल्क की 'स्टेट लैंग्वेज' के मातृभाषियों की जनसंख्या चौंसठ लाख। कौन हैं ये लोग ? पाकिस्तान में तो उर्दूभाषा का कोई 'लैंग्वेज एरिया' नहीं है। ये चौंसठ लाख लोग वे हैं जो पाकिस्तान बनने के समय या बनने

के बाद भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश आदि राज्यों से पाकिस्तान चले गए थे तथा वहाँ ये लोग आज भी 'मुजाहिर' कहलाते हैं।

मैंने रब्बानी साहब से दरयाफ्त किया कि क्या मैं इन ऑकड़ों का अपने किसी आर्टिकिल में इस्तेमाल कर सकता हूँ तो उन्होंने जवाब दिया –

''आप बेशक कर सकते हैं क्योंकि ये पाकिस्तान सरकार की रिपोर्ट में पब्लिशड हैं।''

मैंने रब्बानी साहब को यह भी जानकारी दी कि उर्दू स्टाइल में मुसलमानों के साथ–साथ हिन्दुओं तथा जैनियों ने उसी प्रकार साहित्य–रचनाएँ की हैं जिस प्रकार मध्य युग में भारत के मध्य में प्रचलित साहित्यिक भाषा–रूपों 'अवधी' तथा 'ब्रज' में मुसलमानों ने रचनाएँ कीं।

बोलचाल की भाषा तथा साहित्यिक भाषा का अन्तर

रब्बानी साहब ने जानना चाहा कि उन्हें मुझसे बातें करते समय तो कोई खास फर्क नहीं मालूम पड़ता मगर जब वे हिन्दी की कविता सुनते हैं तो बहुत फर्क मालूम पड़ता है।

मैंने रब्बानी साहब को बोलचाल की भाषा तथा साहित्यिक भाषा (लिटरेरी लैंग्वेज) का अन्तर बतलाया। मैंने रेखांकित किया कि किसी भाषा को हम उसके 'ग्रामर' से पहचानते हैं। मैं Monday को Market जाऊँगा– यह जुमला हिन्दी–उर्दू का कहलाएगा। इसका कारण यह है कि इसका ग्रामर हिन्दी–उर्दू का है, इसमें भले ही अल्फाज़ अंग्रेजी के अधिक हैं।

शब्द भाषा में आते रहते हैं, जाते रहते हैं। जब जीवन बदलता है, कल्चर बदलती है, तो शब्द भी बदल जाते हैं। ग्रामर के बदलने की रफ़्तार बहुत धीमी होती है। इसी कारण कोई भाषा उसके व्याकरण से पहचानी जाती है।

मुस्लिम शासन के दौरान तुर्की, अरबी, फ़ारसी, उज़्बेकी, ताज़िकी, पश्तो आदि भाषाओं के शब्द किस प्रकार हिन्दुस्तान की भाषाओं मे आकर घुलमिल गए – इस बारे मे हमने अलग–अलग अवसरों पर विचार–विमर्श किया। उर्दू बोलने वाले भले ही अरबी–फ़ारसी शब्दों का अधिक प्रयोग करते हों मगर भारत की भाषाओं में घुलमिल जाने वाले शब्दों का सभी लोग प्रयोग करते हैं। मूल शब्दों के पहले या बाद में जुड़कर उनका अर्थ बदलने वाले

तुर्की, अरबी, फारसी के 'प्रिफ़िक्सिस' (उपसर्गों) एवं 'सफ़िक्सिस' (प्रत्ययों) का भी हिन्दी की सभी उपभाषाओं एवं बोलियों में बोलने वाले तथा साहित्य–रचना करने वाले प्रयोग करते हैं। बदलचन, बावजूद, बाकायदा, बेईमान, बेशक आदि शब्दों का सभी प्रयोग करते हैं जिनमें 'बद–', 'बा–', 'बे–' उपसर्ग हैं। इसी प्रकार पानदान, पीकदान, जादूगर, बाजीगर, सौदागर, जेलखाना, कारखाना, इलाहाबाद, हैदराबाद, अहमदाबाद आदि शब्दों में '–दान ', '–गर ','–खाना ', '–आबाद ' पर प्रत्यय हैं। क्रिया की कुछ धातुओं का भी सभी प्रयोग करते हैं। ख़रीदना, गुज़रना, वसूलना, आदि धातुओं का हिन्दी–साहित्य में भी प्रयोग होता है तथा उर्दू–साहित्य में भी। इस प्रकार जो प्रभाव पड़ा है वह शब्दों, उपसर्गों, प्रत्ययों, धातुओं पर पड़ा है। उर्दू पर अधिक, शेष भाषा–रूपों पर कम।

मगर अरबी, फारसी तथा तुर्की के व्याकरण को हमारी भाषाओं ने ग्रहण नहीं किया। हिन्दी–उर्दू के 'ग्रामर' में कोई अन्तर नहीं है। अपवादस्वरूप सम्बन्धकारक चिन्ह तथा बहुवचन प्रत्यय को छोड़कर। हिन्दी की उपभाषाओं, बोलियों, व्यवहारिक हिन्दी, मानक हिन्दी में बोला जाता है– 'गालिब का दीवान'। उर्दू की ठेठ स्टाइल में कहा जाएगा –' दीवाने गालिब '। [अब दैनिक हिन्दी समाचार पत्रों में इस प्रकार के प्रयोग धड़ल्ले से हो रहे हैं।] हिन्दी में 'मकान' का अविकारी कारक बहुवचन वाक्य में 'मकान' ही बोला जाएगा। ' उसके तीन मकान '। उर्दू में ' मकान ' में '–आत' जोड़कर बहुवचन प्रयोग किया जाता है–'मकानात'। विकारी कारक बहुवचन वाक्य में प्रयोग होने पर हिन्दी–उर्दू में ' – ओं ' जोड़कर ' मकानों ' ही बोला जाएगा।'मकानों को गिरा दो ' – यह प्रयोग हिन्दी में भी होता है तथा उर्दू में भी। कुछष्षब्दों का प्रयोग हिन्दी में स्त्रीलिंग में तथा उर्दू में पुल्लिग में होता हे। हिन्दी में ' ताज़ी खबरें ' तथा उर्दू में ' ताज़ा ख़बरें '। [इस प्रकार का अन्तर 'पष्चिमी – हिन्दी ' तथा ' पूर्वी – हिन्दी ' की उपभाषाओं में कई षब्दों के प्रयोग में मिलता है।] इनको छोड़कर हिन्दी–उर्दू का ग्रामर एक है। चूँकि इनका ग्रामर एक है इस कारण हिन्दी–उर्दू भाषा की दृष्टि से एक है। इसलिए बोलचाल में दोनों में फर्क नहीं मालूम पड़ता।

'साहित्यिक भाषा' में भाषा के अलावा अन्य बहुत से तत्व होते हैं। साहित्य में कथानक होता है, वहाँ किसी की किसी से उपमा (सिमिली) दी जाती है, अलकृंत शैली (ऑरनेट स्टाइल) होती है, प्रतीक रूप में (सिम्बॉलिक) वर्णन होता है, छंद (मीटर) होते हैं। प्रत्येक देष के साहित्य की अपनी परम्परा होती

है, कथा, कथानक, कथानक–रूढ़ियों, अलंकार–योजना, प्रतीक–योजना, बिम्ब–योजना, छंद–विधान की विशेषताएँ होती हैं।

एक भाषा – रूप से 'हिन्दी–उर्दू' की दो साहित्यिक शैलियाँ (स्टाइल्स) विकसित हुईं। एक शैली 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' कहलाती है जिसमें भारतीय प्रतीकों, उपमानों, बिम्बों, छंदों तथा संस्कृत की तत्सम एवं भारत के जनसमाज में प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है तथा जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। 'उर्दू' स्टाइल के अदबकारों ने अरबी एवं फारसी–साहित्य में प्रचलित प्रतीकों, उपमानों, बिम्बों, छंदो का अधिक प्रयोग किया। जब अरबी–फारसी अदब की परम्परा के अनुरूप या उससे प्रभावित होकर साहित्य लिखा जाता है तो रचना में अरबी साहित्य तथा फारसी–साहित्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का बहुल प्रयोग तो होता ही है, उसके साथ–साथ शैलीगत उपादानों तथा लय और छंद में भी अन्तर हो जाता है जिससे रचना की जमीन और आसमान बदले–बदले नजर आने लगते हैं। यदि कथानक रामायण या महाभारत पर आधारित होते हैं तो 'रचना–वातावरण' एक प्रकार का होता है, यदि कथानक 'लैला–मजनूँ', 'युसुफ–जुलेखा', 'शीरी–फरहाद' की कथाओं पर आधारित होते हैं तो 'रचना–वातावरण' दूसरे प्रकार का होता है।

उपमा 'कमल' से या चाँद से दी जाती है तो पेड़ की एक शाखा पर जिस रंग और खुशबू वाले फूल खिलते हैं, उससे भिन्न रंग और खुशबू वाले फूल पेड़ की दूसरी शाखा पर तब खिलने लगते हैं जब उपमान 'आबे जमजम', 'कोहेनूर', 'शमा', 'बुलबुल' आदि हो जाते है। बोलचाल में तो 'हिन्दी–उर्दू' बोलने वाले सभी लोग रोटी, पानी, कपड़ा, मकान, हवा, दूध, दही, दिन, रात, हाथ, पैर ,कमर, प्यास, प्यार, नींद, सपना आदि शब्दों का समान रूप से प्रयोग करते हैं, मगर जब 'चाँद उगा' के लिए एक शैली के साहित्यकार 'चन्द्र उदित हुआ' तथा दूसरी शैली के अदबकार 'माहताब उरुज हो गया'' लिखने लगते हैं तो एक ही भाषा–धारा दो भिन्न प्रवाहों में बहती हुई दिखाई पड़ने लगती है । जब साहित्य की भिन्न परम्पराओं से प्रभावित एवं प्रेरित होकर लिखा जाता है तो पानी की उन धाराओं में अलग–अलग शैलियों के भिन्न रंग मिलकर उन धाराओं को अलग–अलग रंगों का पानी बना देते हैं।

पाकिस्तानी उर्दू तथा हिन्दी

रब्बानी साहब मेरे सारे संकेत समझ गए । उन्होंने मुझे सूचना दी कि मैं जिस जमीन और आसमान की बात कर रहा हूँ तथा उर्दू अदब को अरबी और फारसी के अदब से जोड़कर उसी स्टाइल की जो खूबियॉ बता रहा हूँ उससे वे इन्कार करते हैं, उस पर एतबार नहीं कर सकते। उन्होंने बताया कि आपके मुल्क के उर्दू के अदब में भले ही ये खूबियाँ मिलती हों, मगर पाकिस्तान के अदबकार अरबी–फारसी के मुकाबिले अपनी धरती पर बोले जाने वाले अल्फाज़ों का प्रयोग करते हैं तथा हमारे अदब में ईरान या अरब की जमीन और आसमान नहीं, पाकिस्तान की जमीन और आसमान हैं।

बाद में उन्होंने मुझे अपने राजदूतावास में बुलाकर पाकिस्तानी उर्दू के साहित्यकारों की रचनाएँ सुनाईं। पाकिस्तानी फिल्मों तथा टीवी सिरियल्स के कैसेट देखने के लिए दिए। रचनाएँ सुनकर तथा कैसेट देखकर–सुनकर रब्बानी साहब की बात की पुष्टि हुई। मैं यहाँ इतना अवश्य कह सकता हूँ कि पाकिस्तान में भाषा और साहित्य दोनों धरातलों पर जिस उर्दू भाषा का विकास हो रहा है वह अपनी प्रकृति में भारत में सन् 1960 के बाद हिन्दी कथा–साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा के अधिक निकट है।

बाद में जब भी भारत, पाकिस्तान तथा बंगलादेश के राजनयिकों की बैठकें जमती थीं तो सबसे पहले रब्बानी साहब प्रस्ताव रखते थे कि भाई अपनी धरती की उस बोली में बोलेंगे जो हम सबको मिलाती है। हम अंग्रेजी में क्यों बोले ?

प्रोफेसर महावीर सरन जैन

123, हरि एन्कलेंव

बुलन्द शहर

mahavirsaranjain@gmail.com